③

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-18, अङ्क-6 (वी.नि.सं. 2544) जून 2018

गतांक से आगे...

प्रशममूर्ति बहिनश्री के वचनामृतों का भावानुवाद

(छन्द - हरिगीतिका)

भावना चैतन्य की निष्फल कभी होती नहीं।
भले ही लगता समय हो, सफल होती है सही॥55॥

जीव का जीवन गया, वह तो कभी दिखता नहीं।
एक वस्तु पुत्र आदि में, तू पूरा खो गया॥
कर विचार अरे! तू सारे दिन कहाँ पर रुक गया।
आत्मा कैसे मिलेगा, तू जगत में फँस गया॥56॥

पूज्य श्री गुरुदेव के, मुख से श्रवण जिसने किया।
तत्त्व का उसको मनन, अब शीघ्र करना चाहिए॥
आत्म परिणति में भरे रस, पठन करना चाहिए।
मार्ग मिलता ध्येयपूर्वक, मनन करना चाहिए॥57॥

ज्ञानी को दृष्टि अपेक्षा, राग भिन्न है भासता।
चैतन्य की पर्याय में है, यद्यपि यह जानता॥58॥

यदि जीव को स्थूल भाव, नहीं पकड़ में आ सकें।
तो सूक्ष्म परिणामों को, वह कैसे पकड़ सकता भला॥
पकड़े नहीं परिणाम सूक्ष्म, तो स्वभाव न लख सके।
ज्ञान को तीक्ष्ण करे तो, तभी स्वभाव पकड़ सके॥59॥

भावानुवाद—संजयकुमार जैन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़
पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
श्रीमती सूर्याबहिन
धर्मपत्नी
महेन्द्रशाह 'मन्नूभाई'
13 - एशले रोड, नार्थटन
हीथ, सरे - सी.आर. 7 6
एच.डब्ल्यू. (यू.के.)

क्या - कहाँ

मुनिधर्म के दस भेद........................... 5
आत्मज्ञान ही आनंद-मंगलरूप है....... 6
आत्मस्वरूप का उपदेश.................... 8
आत्मा की अनुभूति वचनातीत है,..... 10
योगियों को गोचर ऐसा सहज........... 12
नि:कांक्ष-अंग में प्रसिद्ध.................. 15
आचार्य बप्पदेव............................. 24
श्री आर्यमंक्षु और नागहस्ति.............. 25
सम्यक्त्व.. 28
समाचार-दर्शन.............................. 32

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत द्वादशानुप्रेक्षा में से

मुनिधर्म के दस भेद

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य—ये मुनिधर्म के दस भेद हैं ॥70 ॥

यदि क्रोध की उत्पत्ति का साक्षात् बहिरंग कारण हो, फिर भी किंचित् भी क्रोध नहीं करता [त्रैकालिक सर्वज्ञस्वभाव को समीप रखकर ज्ञाता ही रहता है] उसके क्षमाधर्म होता है ॥71 ॥

जो मुनि कुल, रूप, जाति, बुद्धि, तप, श्रुत तथा शील के विषय में कुछ भी गर्व नहीं करते, [नित्य ज्ञानचेतना में सावधान रहता है] उसके मार्दवधर्म होता है ॥72 ॥

जो मुनि कुटिलभाव को छोड़कर निर्मल हृदय से आचरण करता है [अपने त्रैकालिक अकषाय आर्यस्वभाव—ज्ञ-स्वभाव में सरलता सहित रहता है।] उसके नियम से आर्जवधर्म होता है ॥73 ॥

दूसरों को संताप करनेवाले वचन को छोड़कर जो भिक्षु स्व-पर हितकारी वचन बोलता है, उसके [परिणामों की निर्मलता के कारण] सत्यधर्म होता है ॥74 ॥

जो मुनि उत्कृष्टतया कांक्षाभाव से निवृत्ति कर वैराग्यभाव से युक्त (नित्य नि:कांक्षभाव से अवस्थित) रहता है, उसके शौचधर्म होता है ॥75 ॥

मन-वचन-काय की प्रवृत्तिरूप दंड को त्यागकर तथा इंद्रियों को जीतकर [नित्यज्ञायक स्वभावभाव के बल द्वारा] जो व्रत और समितियों के पालनरूप चेष्टा करता है—[आत्मव्यवहार-वीतराग परिणति सहित है] उसके नियम से संयमधर्म होता है ॥76 ॥

.....शेष पृष्ठ 14 पर

आत्मज्ञान ही आनंद-मंगलरूप है

[पूज्य स्वामीजी के प्रवचन से]

आत्मा सत्-चैतन्य आनंदमय शाश्वत वस्तु है। ऐसे आत्मस्वभाव के सन्मुख होकर शरीरादिक तथा रागादिक विभावों से विमुख होना, सो मांगलिक है। अनादि काल में जो प्राप्त नहीं हुई, ऐसी अपूर्व आत्मशांति जिससे प्राप्त हो, वह मंगल है। अंतर में आत्मा पवित्रस्वभावी भगवान है, उसके समीप जाने से सुख की प्राप्ति होती है, वह मंगल है। लौकिकजनों में पुत्रजन्म, विवाह, लक्ष्मी की प्राप्ति इत्यादि मंगल कहलाते हैं; किंतु यह कहीं वास्तविक मंगल नहीं है। वास्तविक मंगल तो भगवान आत्मा के स्वभाव में निवास करके अविनाशी सुख की प्राप्ति हो, ममकाररूप पाप गले, वह सच्चा मंगल है; ऐसे जीव को अंतर के आनंद-समुद्र में से शांति का स्रोत प्रवाहित होता है। ऐसा मंगल जीव ने कभी नहीं किया। आत्मज्ञान के बिना अनंत बार त्यागी होकर मुनिव्रत पालन किया, किंतु उस शुभ से धर्म मानकर आकुलता का ही वेदन किया, आकुलता से रहित ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा है, उसका वेदन नहीं किया; उसकी पहिचान भी नहीं की। आत्मा स्वयं आनंदस्वरूप है, उसके ज्ञान से आनंद की प्राप्ति होती है, यही मंगल है। आठ वर्ष का बालक भी आत्मा का ज्ञान करके ऐसा मंगल प्रगट करके केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है।

आत्मा का सच्चा स्वरूप क्या है ? उसे पहिचानकर अनुभव करना, सो धर्म है, वही मोक्षमार्ग है। जितने व्यवहार के विकल्प हैं, वह अभूतार्थ हैं; गुण-गुणी भेद के विकल्परूप व्यवहार, वह भी भूतार्थ आत्मा नहीं है, उसके द्वारा आत्मा अनुभव में नहीं आ सकता। शुभराग, वह आत्मा के चेतनस्वभाव में असद्भूत है। केवल राग की ही ओर झुका हुआ ज्ञान वह सच्चा ज्ञान नहीं है। अकेला चिदानंदस्वभाव राग से पार है, ऐसे स्वभाव के आश्रय से ही सम्यक् श्रद्धा होती है। जातिस्मरण या दु:ख का वेदन इत्यादि

कारणों से सम्यक्त्व होना बतलाना, यह व्यवहार है; वास्तव में तो जब अंतर में एकरूप आत्मा का अवलंबन लेकर सम्यग्दर्शन प्रगट करे, तब अन्य सभी कारणों को व्यवहार कारण कहा जाता है; इसके अतिरिक्त केवल व्यवहार कारणों से किसी को सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता।

यहाँ पर्याय को गौण किया है; किंतु वह आत्मा में है ही नहीं—ऐसा नहीं है; सर्वथा पर्याय न हो तो एकांत वेदांत जैसा हो जाएगा। पर्याय है, किंतु शुद्धात्मा के वेदन में—अनुभव में पर्याय का भेद नहीं। व्यवहार को छोड़ने का अर्थ पर्याय का त्याग कर देना—ऐसा नहीं, किंतु अभेद स्वभाव का आश्रय करके भेद का आश्रय छोड़ना, वह सम्यग्दर्शन है, उसमें आत्मा के आनंद का स्वाद आता है।

सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र आत्मा का मुख्य गुण है। जिस प्रकार अग्नि में पाचक, प्रकाशक तथा दाहक—ऐसी तीन शक्तियाँ हैं; पाचकशक्ति अनाज को पकाती है, प्रकाशकशक्ति प्रकाश प्रदान करती है तथा दाहकशक्ति लकड़ी इत्यादि को जलाती है; इसी प्रकार आत्मा की श्रद्धाशक्ति संपूर्ण शुद्ध आत्मा को भूतार्थदृष्टि में पचाती है अर्थात् स्वीकार करती है; प्रकाशकशक्ति ऐसी ज्ञानशक्ति है कि वह स्व-पर को प्रकाशित करती है; तथा दाहकरूप चारित्रशक्ति आठ कर्मों को तथा रागादि परभावों को जलाकर नष्ट करती है।—ऐसे स्वभाववाला आत्मा है। ऐसे आत्मा को शुद्धनय के द्वारा पहिचाने तो सम्यग्दर्शन होता है।

जन्म-मरण से जिसको बाहर निकलना हो, उसके लिए यह बात है। जिसका हृदय व्यवहार में ही मोहित है, वह अपने एकरूप शुद्धात्मा को नहीं देखकर अनेकरूप ऐसे रागादि परभावों को ही देखता है; ऐसे जीवों को आत्मा का सम्यग्दर्शन नहीं होता तथा वे जन्म-मरण से भी नहीं छूटते। अंतर में दृष्टि करके आत्मा के सच्चे स्वभाव को देखे तो सातवें नरक का नारकी भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है। ऐसे सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए

......शेष पृष्ठ 23 पर

आत्मस्वरूप का उपदेश

[पूज्य स्वामीजी का एक सरल-सुंदर प्रवचन]

यह समयसार सिद्धांतशास्त्र है, इसकी 68वीं गाथा में पूर्ण आत्मा की बात है। धर्मी अपने कैसे आत्मा का अनुभव करता है, उसका यह वर्णन है। अपने शुद्ध आत्मा को पहिचाने बिना अनादि काल से जीव संसार में भ्रमण कर रहा है। संसार में मनुष्यभव मिलना अत्यंत दुर्लभ है; मनुष्यभव प्राप्त करके भी आर्यपना प्राप्त होना और उसमें भी आत्मा के कल्याण की सत्य बात सुनने को मिलना तो अत्यंत दुर्लभ है।

आत्मा शुद्ध ज्ञानानंदस्वरूप है; वह स्वयं ही है। जिस प्रकार किसी की मुट्ठी में सुवर्ण हो किंतु भूल से बाहर खोजता हो, किंतु स्मृति होते ही स्वर्ण स्वयं के हाथ में है, यह देखकर आनंदित होता है। इसी प्रकार आत्मा का अनुभव होते ही मुमुक्षु जीव कहता है कि अरे! मैं स्वयं ही चैतन्य परमेश्वर हूँ, ज्ञान-आनंदस्वरूप परम ऐश्वर्यवान तो मेरा आत्मा ही है, किंतु अपना स्वरूप मैं भूल गया था, उसे वीतरागमार्गी गुरुजनों ने मेरे अपने में बतलाया है। अहा, मेरा परम भाग्य है कि मुझे गुरु प्राप्त हुए और ऐसा आत्मस्वरूप समझने को मिला! श्रीगुरु ने क्या समझाया? कि तेरा आत्मा ही अपना परमेश्वर है, ज्ञान-दर्शन-सुखस्वभाव तुझमें ही भरा है—आत्मा का ऐसा स्वरूप निरंतर समझाया। गुरु तो निरंतर न कहकर अमुक समय ही उपदेश देते हैं; किंतु समझने की रुचि से शिष्य आत्मा के उपदेश का उल्लासपूर्वक 'निरंतर मंथन' करता है। इस प्रकार स्वयं समझने के लिए निरंतर पुरुषार्थ है, इसलिए निमित्तरूप श्रीगुरु निरंतर समझाते हैं, ऐसा कहा गया है। देखो! यह आत्मा को समझने का उपाय, ऐसा ज्ञान करनेयोग्य है।

जीव स्वयं को भूल गया, यही अपना दोष है और अपने दोष से ही इसको बंधन है। अपना दोष समझकर आत्मा की पहिचान के द्वारा उसे दूर करना चाहिए। आत्मा का ज्ञान स्वयं करे, तब होता है। जिस प्रकार जिसको भूख लगी हो, वह स्वयं भोजन करे, तब तृप्ति होती है, किंतु दूसरा भोजन

करे, उससे कहीं इसका पेट नहीं भरेगा; इसी प्रकार जिसको आत्मा को समझने की भूख लगी हो तो वह अंतर की रुचिपूर्वक आत्मा का ज्ञान करे तो होता है; किंतु अन्य ज्ञानी के सन्मुख देखा करे एवं अपने में अंतर्मुख न हो तो सच्चा ज्ञान नहीं होता। ज्ञानी तो कहते हैं कि तू अपने में देख। तेरा परमेश्वर-आत्मा तुझमें ही है; यही तेरा निजपद है। ऐसे आत्मा की पहिचानकर धर्मी जीव आतमराम हुआ, आत्मा ही उसका विश्रामधाम है; उसका अनुभव करके उसमें एकाग्र हुआ। जिस प्रकार प्रकाश में गिरी हुई सुई को अंधकार में खोजे तो प्राप्त नहीं होती; जहाँ है, वहाँ खोजे तो मिलती है; न हो, वहाँ खोजने से नहीं मिलती। इसी प्रकार आत्मा को अज्ञानी जीव राग तथा शरीर में खोजते हैं; आत्मा तो ज्ञान के प्रकाश में है; उसे प्रकाश में खोजने के बदले राग के अंधकार में अथवा जड़ के अंधकार में खोजे तो कहाँ से प्राप्त होगा? आत्मा जहाँ हो, वहाँ खोजे तो प्राप्त होगा; किंतु जहाँ नहीं है, वहाँ खोजे तो कहाँ से प्राप्त होगा?

शरीर के अंदर जाननेवाला आत्मा है, उसकी पहिचान करना चाहिए। यह शरीर तो धूल-रजकणों का बना हुआ है, यह आत्मा का बना हुआ नहीं है। आत्मा कैसा है? तो कहते हैं:—

'शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम।'

भाई, सुख का धाम तो आत्मा है। यह शरीर तो जड़ की भूमि है; जड़ की भूमि में अथवा राग की भूमि में सुख की पैदावार कभी नहीं होती, सुख तो आत्मा की चैतन्य-भूमि में उत्पन्न होता है, उसमें सुख भरा है। ऐसे आत्मा को धर्मी ने अनुभव में लिया है। छोटे-छोटे बालकों को भी इसका ज्ञान करना चाहिए, क्योंकि आत्महित के लिए यही सच्ची विद्या है।

आत्मा का चक्षु तो ज्ञान है, वह ज्ञान सभी को जानता है, किंतु अन्य का कार्य किंचित् नहीं करता। ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वयं अपने को भी स्वानुभव के द्वारा प्रत्यक्ष जानता है; ऐसा ज्ञान करना, वह मोक्ष का अर्थात् सुख का मार्ग है। ●

दशधर्मों के प्रवचनों से

पर्यूषण के प्रवचनों से स्वानुभूतिसूचक दोहन यहाँ दिया जाता है।

जिज्ञासुओं को यह अत्यंत मननीय है।

[समयसार नाटक : सर्वविशुद्धज्ञान द्वार 124-125-126]

आत्मा की अनुभूति वचनातीत है, मोक्षमार्ग का उसमें समावेश है।

ज्ञानी और अज्ञानी को बाह्य में मुनिवेश एक-सा दिखाई दे, तथापि दोनों की अंतरंग परिणति में बड़ी भिन्नता है। ज्ञानी को स्व-पर की भिन्नता की प्रतीति द्वारा अंतर में सम्यग्ज्ञान-किरण का प्रकाश प्रगट हुआ है; वह अपनी ज्ञान-किरणों से देहादि की क्रिया को अत्यंत भिन्न जानता है। देह की दशा को आत्मा की नहीं मानता। ज्ञानी के अंतरंग में मोक्ष की किरण जागृत हुई है, शांतभाव का उदय हुआ है। उसके द्वारा वह मोक्षमार्ग के सन्मुख वर्त रहा है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ-अवस्था में हो और बाह्य में त्यागी भी न हो, मुनिदशा भी न हो, तथापि वह अपने को ज्ञानमय अनुभव करता हुआ मोक्षमार्ग के सन्मुख ही है।

अज्ञानी के अंतर में ज्ञान-किरण तो जागृत नहीं हुई है, अज्ञानवश उसका हृदय अन्ध है, इसलिए वह बंधनभाव को ही करता है तथा अपने को देह की दशारूप अनुभव करता है। देह से तथा बंधभावों से भिन्न अपने चिदानंदतत्त्व को वह नहीं पहिचानता। बाह्य चारित्र तथा शुभराग हो, उसे ही अपना स्वरूप मानता है, उसे मोक्ष का साधन मानता है, लेकिन अपने सच्चे स्वरूप को और मोक्ष के सच्चे कारण को वह जानता नहीं। अहा, मोक्ष का मार्ग तो अंतर में आत्म-अनुभूति ही है! ऐसी आत्म-अनुभूति हुई, वह वचनातीत है, वही समयसार है, उससे उत्कृष्ट अन्य कोई नहीं। अहा, अधिक क्या कहें? अनुभूति वचन में नहीं आती, अत: वचन-विकल्पों से बस हो! वे सब तो दुर्विकल्प हैं। आत्मा के परमार्थ का समावेश तो स्वानुभव में ही होता है; इसलिए आचार्यदेव कहते हैं कि—

अरे, जिनवचन का विस्तार तो अगाध एवं अपार है, वह वाणी द्वारा तो कितना कहा जाए ? जितना अनुभव में आता है, उतना वचन में नहीं आता। स्वानुभवगम्य वस्तु का पार वचन-विकल्प से कैसे आये ? इसलिए वचन-विकल्प से रहित होकर हम तो स्वानुभव में ही रहना चाहते हैं। आत्मा के शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यघनस्वरूप का वर्णन करके अंत में श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि—

निश्चय सर्वे ज्ञानीनो आवी अत्र समाय;
धरी मौनता अेम कही, सहज समाधिमांय॥

अधिक बोलने से, अधिक विकल्पों से कहीं इष्टसिद्धि नहीं है; अत: चुप रहना ही अच्छा है। अर्थात् अंतर में विकल्पों से रहित होने का अभ्यास करके स्वानुभव करने का ही तात्पर्य है। सम्यग्दर्शन प्रगट करने में भी प्रथम आत्मा का अनुभव है; वह अनुभव हो, तभी सम्यग्दर्शन होता है। वचन द्वारा या विकल्पों द्वारा आत्मा का पार नहीं पाया जा सकता।

अधिक बोलने से क्या इष्ट है ? इसलिए चुप रहना ही अच्छा है, जितना प्रयोजन हो, उतना ही उत्तम वचन बोलना। शास्त्रों के अभ्यास में भी जो विकल्प हैं, उनसे भी कार्यसिद्धि नहीं होती। अत: वचन का प्रलाप और विकल्पजाल छोड़कर, विकल्प से पृथक् ज्ञानचेतना द्वारा शुद्ध परमात्मा के अनुभव का अभ्यास करना ही इष्ट है, वही मोक्ष का मार्ग है, वही परमार्थ है। आत्मा का जितना अनुभव है, उतना ही परमार्थ है; अन्य कोई परमार्थ अर्थात् मोक्ष का कारण नहीं।

शुद्धातम-अनुभव क्रिया, शुद्ध-ज्ञान-दृग दौर;
मुक्तिपंथ साधन यहै, वागजाल सब और॥

शुद्धात्मा के अनुभवरूप जो क्रिया है, वह शुद्ध ज्ञान-दर्शन तथा चारित्र है, वही मोक्षपंथ है, वही मोक्ष का साधन है। इसके अतिरिक्त सब विकल्पजाल है। जिसे ऐसे आत्मा का अनुभव करना आया, उसे सब आ गया।

....शेष पृष्ठ 14 पर

योगियों को गोचर ऐसा सहज चैतन्यतत्त्व

[अपने इस अद्‌भुत तत्त्व को मैं अति अपूर्व रीति से भाता हूँ।]

[नियमसार श्लोक 155, 156, 157]

परम पुरुष ऐसा चैतन्यमूर्ति आत्मा कैसा है ?—वह मन और वचन के मार्ग से दूर है, मन-वचन से अगोचर है, परंतु वह ज्ञानज्योति द्वारा धर्मात्माओं के चित्त में स्पष्ट है। धर्मात्मा मन-वचन से पार होकर स्पष्ट स्वसंवेदन से उसका अनुभव करते हैं। ऐसी अनुभूति में विधि-निषेध के कोई विकल्प नहीं हैं, क्योंकि वहाँ ग्रहण करने योग्य ऐसे शुद्धतत्त्व का साक्षात् ग्रहण है और निषेधरूप समस्त परभावों का अभाव ही है।

धर्मात्मा अपनी अनुभूति द्वारा सहज चैतन्यतत्त्व को अपने में अनुभव करता है। कोई भी इन्द्रिय-जनित कोलाहल उसमें नहीं, वह परम शांत है। सहज तत्त्व कोलाहल रहित है, क्योंकि वह इन्द्रियों से पार है। नय के विकल्पों से दूर होने पर भी वह कहीं अगोचर नहीं है, उपयोग को अंतर में लगानेवाले योगियों को वह प्रत्यक्षगोचर है।

अंतर्मुख उपयोगस्वरूप स्वसंवेदन ज्ञान में सहजतत्त्व साक्षात् प्रतीत होता है—अनुभव में आता है। मन से तथा कोलाहल से दूर होने पर भी धर्मी की स्वसन्मुख पर्याय में वह समीप है, दूर नहीं। ऐसा तत्त्व ही जगत में उत्कृष्ट है, वह निज अनुभूति की समृद्धि से सुशोभित है। मेरे सम्यग्दर्शनादि भावों में मेरा आत्मा ही अभेद है, इसलिए वही समीप है और परभावों के कोलाहल उसमें नहीं हैं, उनसे वह दूर है, पृथक् है।

अज्ञानी जीवों की अनुभूति में रागादि परभाव ही दिखते हैं, इसलिए उन्हें परभाव निकट प्रतीत होते हैं तथा सहज चैतन्यतत्त्व दूर लगता है। ज्ञानी को स्वानुभूति में अपना परम तत्त्व समीप है और परभाव दूर हैं। अहो! सम्यग्दृष्टि को अपना आत्मा गम्य है, अपने में ही अनुभवगोचर है, पास में है। अज्ञानी इंद्रिय-मन से तथा संकल्प-विकल्प के कोलाहल से पृथक्

नहीं होता, इसलिए उसे परम तत्त्व दूर है। चैतन्यतत्त्व शुभ के विकल्प से दूर हैं, चैतन्यज्योति राग से भिन्न प्रकाशमान है, उसी में आत्मा है। चैतन्यदीप के निकट ही आत्मा का घर है, अर्थात् वही आत्मा है।

लोक में कहावत है कि 'मामा का घर कितनी दूर? दिया जले उतनी दूर।' उसी प्रकार 'आत्मा का घर कितनी दूर?' तो कहते हैं कि 'दिया जले उतनी दूर' अर्थात् चैतन्य की ज्योति जहाँ जगमगाती है, वही आत्मा का घर है। आत्मा स्वानुभवरूपी चैतन्यदीप द्वारा प्रत्यक्षगोचर होता है। ऐसा निर्दोष सहज चैतन्यतत्त्व अत्यंत जयवंत है।

यह चैतन्यतत्त्व अपने सुखरूपी सुधासागर में सदा लीन है। आत्मा में सुख का समुद्र सदा भरपूर है, जिसकी ओर दृष्टि करते ही अपने में अपूर्व सम्यक्त्व का अमृतसागर प्रगट होता है तथा मिथ्यात्व का विष उतर जाता है। परमगुरु द्वारा भव्यजीवों ने ऐसे शुद्ध आत्मा को जाना है और शाश्वत सुख का अनुभव किया है। अहो! सुख से भरे हुए अद्भुत सहज तत्त्व को मैं भी अति अपूर्व रीति से भाता हूँ। अपने तत्त्व का अनुभव करके उसी की निरंतर भावना करता हूँ।

अहा! जगत में ऐसे चैतन्यतत्त्व की भावना करनेवाले—अनुभव करनेवाले संत-धर्मात्मा श्रेष्ठ हैं। जगत की स्पृहा उन्हें नहीं है; इंद्र तथा चक्रवर्ती की विभूति का भी जिसके समक्ष कोई मूल्य नहीं; ऐसी चैतन्यविभूति उन्होंने प्राप्त कर ली है। धन आदि परिग्रह न होने पर भी वे वीतरागी संत कहीं निर्धन नहीं हैं, वे तो परमेष्ठी परमेश्वर भगवान हैं। चैतन्यतत्त्व से उत्कृष्ट वैभव इस जगत में दूसरा कोई नहीं है। ऐसे तत्त्व की भावनावाले सन्तों को हम प्रणाम करते हैं। तथा हम भी ऐसे सहज तत्त्व की भावना करते हैं, अनुभव करते हैं। ऐसी अनुभूति, वह मार्ग है। उत्तम क्षमादि समस्त वीतरागी धर्मों का ऐसे अनुभव में समावेश है। उनमें कोई कोलाहल नहीं, कोई क्लेश नहीं; वही अभेद मुक्ति का मार्ग है। 'निजभाव से भिन्न ऐसे समस्त विभाव को छोड़कर मैं एक निर्मल चैतन्यमात्र तत्त्व की ही भावना

करता हूँ, उसके श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव में एकाग्र होता हूँ। संसार-सागर से पार होने के लिए अभेद मुक्तिमार्ग को मैं नित्य नमन करता हूँ; अर्थात् चैतन्यभावना द्वारा मैं भी उसी मार्ग पर जाता हूँ। ●

पृष्ठ 5 का शेष

मुनिधर्म के दस भेद

विषय-कषाय के विनिग्रहरूप भाव को [वीतरागी निजपरिणाम को] उत्पन्न करके जो ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा आत्मा की भावना करता है, उसके नियम से तपधर्म होता है ॥77 ॥

[त्रैकालिक निर्मोह ज्ञानस्वभाव में ही एकत्व के बल द्वारा] जो समस्त द्रव्यों के विषय में मोह का त्याग कर तीन प्रकार के निर्वेद की भावना करता है, उसके त्यागधर्म होता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ॥78 ॥

जो मुनि तन:संग-निष्परिग्रही होकर सुख-दु:ख देनेवाले अपने भावों का निग्रह करता हुआ [नित्य चिदानंदूपर्ण स्वरूप में संतुष्ट-तृप्त रहता हुआ] निर्द्वन्द रहता है अर्थात् [स्वरूप में ही विश्रांति द्वारा] किसी इष्ट-अनिष्ट के विकल्प में नहीं पड़ता है, उसके आकिंचन्य धर्म होता है ॥79 ॥

जो स्त्रियों के सब अंग दीख पड़ें, तो उन्हें देखता हुआ भी उनमें खोटे भाव को छोड़ता है अर्थात् किसी प्रकार के विकारभाव को प्राप्त नहीं होता, निज परमात्मतत्त्व में आनंदसहित लीन होता है, वह निश्चय से अत्यंत कठिन ब्रह्मचर्यधर्म को धारण करने के लिये समर्थ होता है, उसको उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म होता है ॥80 ॥ ●

पृष्ठ 11 का शेष

पर्यूषण के प्रवचनों से

अरे, तिर्यंचादिक जीवों को शास्त्रज्ञान न होने पर भी अंतर के वेदन में राग और आत्मा के चैतन्य-स्वाद की भिन्नता जानकर 'यह मेरा आत्मा ही आनंदस्वरूप है'—ऐसा अंतर में वेदन किया, उसमें समस्त शास्त्रों का सार आ गया; उसमें मोक्षमार्ग आ गया। ऐसा आत्मा अनुभव में आया, वह स्वयं आनंदमय जगत्चक्षु है।—ऐसे आत्म-अनुभव में ही मोक्षमार्ग का समावेश होता है। ऐसे आत्मा का अनुभव हम करते हैं, तुम भी करो! ●

सम्यक्तयुत आचार ही संसार में एक सार है,
जिनने किया आचरण उनको नमन सौ-सौ बार है।
उनके गुणों के कथन से गुण ग्रहण करना चाहिए,
अरु पापियों का हाल सुनकर पाप तजना चाहिए॥

निःकांक्ष-अंग में प्रसिद्ध अनंतमती की कथा

अनंतमती ! चंपापुर के प्रियदत्त सेठ उसके पिता, और अंगवती उसकी माता, वे दोनों जैनधर्म के परम भक्त और वैरागी धर्मात्मा थे, उनके उत्तम संस्कार अनंतमती को भी मिले थे।

अनंतमती अभी तो सात-आठ वर्ष की बालिका थी और गुड़ियों का खेल खेलती थी; इतने में ही एक बार अष्टाह्निका पर्व में धर्मकीर्ति मुनिराज पधारे और सम्यग्दर्शन के आठ अंगों का उपदेश दिया; उसमें निकांक्ष गुण का उपदेश देते हुए कहा कि—हे जीवो ! संसार के सुख की वाँछा छोड़कर आत्मा के धर्म की आराधना करो, धर्म के फल में जो संसार-सुख की इच्छा करता है, वह मूर्ख है। सम्यक्त्व या व्रत के बदले में मुझे देवों की या राजाओं की विभूति मिले, ऐसी जो वाँछा करता है, वह तो संसार-सुख के बदले सम्यक्त्वादि धर्म को बेच देता है, छाछ के बदले में रत्न-चिंतामणि बेचनेवाले मूर्ख के समान है। अहा, अपने में ही चैतन्य-चिंतामणि जिसने देखा, वह बाह्य विषयों की वाँछा क्यों करे ?

अनंतमती के माता-पिता भी मुनिराज का उपदेश सुनने के लिए आए थे और अनंतमती को साथ लाए थे। उपदेश के बाद उन्होंने आठ दिन का ब्रह्मचर्यव्रत लिया और हँसी में अनंतमती से कहा कि तू भी यह व्रत ले ले। निर्दोष अनंतमती ने कहा, अच्छा, मैं भी यह व्रत अंगीकार करती हूँ।

इस प्रसंग को अनेक वर्ष बीत गए; अनंतमती अब युवा हुई, उसका रूप सोलह-कलाओं सहित खिल उठा, रूप के साथ धर्म के संस्कार भी खिलते गए।

एकबार सखियों के साथ वह उद्यान में घूमने-फिरने गई थी और एक

झूले पर झूल रही थी; इतने में उधर से एक विद्याधर राजा निकला और अनंतमती का अद्‌भुत रूप देखकर मोहित हो गया, और विमान में उसे उड़ा ले गया परंतु इतने में ही उसकी रानी आ पहुँची; इसलिए भयभीत होकर उस विद्याधर ने अनंतमती को एक भयंकर वन में छोड़ दिया। इस प्रकार दैवयोग से एक दुष्ट राजा के पंजे से उसकी रक्षा हुई।

अब घोर वन में पड़ी हुई अनंतमती पंच परमेष्ठी का स्मरण करने लगी और भयभीत होकर रुदनपूर्वक कहने लगी कि अरे! इस जंगल में मैं कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? यहाँ कोई मनुष्य तो दिखाई नहीं देता ?

इतने में उस जंगल का राजा भील शिकार करने निकला, उसने अनंतमती को देखा, अरे! यह तो कोई वनदेवी है या कौन है ? ऐसी अद्‌भुत सुंदरी दैवयोग से मुझे मिली है—इस प्रकार वह दुष्ट भील भी उस पर मोहित हो गया और उसे अपने घर ले गया और कहा—हे देवी! मैं तुम पर मुग्ध हुआ हूँ और तुम्हें अपनी रानी बनाना चाहता हूँ... तुम मेरी इच्छा पूरी करो।

निर्दोष अनंतमती तो उस पापी की बात सुनते ही फुसक-फुसककर रोने लगी... अरे! मैं शीलव्रत की धारक... और मेरे ऊपर यह क्या हो रहा है ? अवश्य ही पूर्वजन्म में किसी गुणीजन के शील पर मैंने दोषारोपण या उनका अनादर किया होगा; उसी दुष्टकर्म के कारण आज जहाँ जाती हूँ, वहीं मेरे ऊपर ऐसी विपत्ति आ पड़ती है परंतु अब वीतराग धर्म का मैंने शरण लिया है, उसके प्रताप से मैं शीलव्रत से डिग नहीं सकती। अंत में देव भी मेरे शील की रक्षा करेंगे। भले प्राण जावें किंतु मैं शील को नहीं छोड़ूँगी।

उसने भील से कहा : 'अरे दुष्ट! अपनी दुर्बुद्धि को छोड़! तेरे धन-वैभव से मैं कभी ललचानेवाली नहीं। तेरे धन-वैभव को धिक्कारती हूँ!'

अनंतमती की ऐसी दृढ़ बात सुनकर भील राजा क्रोधित हो गया और निर्दयतापूर्वक उस पर बलात्कार करने को तैयार हो गया....

इतने में ऐसा लगा कि मानो आकाश फट गया हो और एक महादेवी वहाँ प्रगट हुई। उसका दैवी तेज वह दुष्ट भील सहन न कर सका, और उसके होश-हवास उड़ गए। वह हाथ जोड़कर क्षमा माँगने लगा। देवी ने

कहा—यह महान शीलव्रती सती है, इसे जरा भी सताएगा तो तेरी मौत हो जावेगी। और अनंतमती पर हाथ फेरकर कहा, बेटी! धन्य है तेरे शील को तू निर्भय रहना! शीलवान सती का बाल वाँका करने में कोई समर्थ नहीं है। ऐसा कहकर वह देवी अदृश्य हो गई।

भयभीत होकर वह भील अनंतमती को लेकर नगर में एक सेठ के हाथ बेच आया। उस सेठ ने पहले तो यह कहा कि, मैं अनंतमती को उसके घर पहुँचा दूँगा; परंतु वह भी उसका रूप देखकर कामांध हो गया और कहने लगा, हे देवी! अपने हृदय में तू मुझे स्थान दे और मेरे इस अपार धन-वैभव को भोग।

उस पापी की बात सुनकर अनंतमती स्तब्ध रह गई... अरे! फिर यह क्या हुआ? वह समझाने लगी कि हे सेठ! आप तो मेरे पितातुल्य हो। दुष्ट भील के पास से आने के बाद तो मैंने समझा था कि मेरा पिता मिल गया... और आप मुझे मेरे घर पहुँचा दोगे। अरे! आप भले आदमी होकर ऐसी नीच बात क्यों करते हैं? यह आपको शोभा नहीं देता-अत: ऐसी पापबुद्धि छोड़ो!

बहुत समझाने पर भी दुष्ट सेठ नहीं समझा, तब अनंतमती ने विचार किया कि इस दुष्ट का हृदय विनय-प्रार्थना से नहीं पिघलेगा... इसलिए क्रोध-दृष्टिपूर्वक उस सती ने कहा कि, अरे दुष्ट! कामांध! तू दूर जा... मैं तेरा मुख भी नहीं देखना चाहती।

उसका क्रोध देखकर सेठ भी भयभीत हो गया और उसकी अक्ल ठिकाने आ गई। क्रोधपूर्वक उसने अनंतमती को कामसेना नाम की एक वेश्या को सौंप दिया।

अरे, कहाँ उत्तम संस्कारवाले माता-पिता का घर! और कहाँ यह वेश्या का घर! अनंतमती की अंतर-वेदना का पार नहीं था; परंतु अपने शीलव्रत में वह अडिग थी। संसार का वैभव देखकर उसका मन तनिक भी ललचाया नहीं था।

ऐसी सुंदरी को प्राप्त करके कामसेना वेश्या अत्यंत प्रसन्न हुई और मुझे बहुत कमाई होगी, ऐसा समझकर वह अनंतमती को भ्रष्ट करने का प्रयत्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

वीरशासन जयन्ती एवं मङ्गल विद्यापीठ उद्घाटन

[दिनांक - 28, शनिवार, जुलाई 2018]

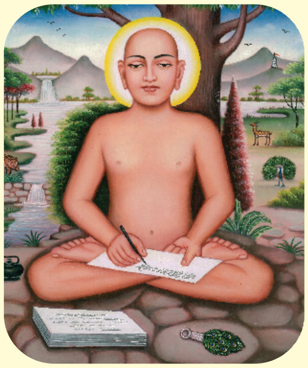

आमन्त्रणपत्रिका

सत्धर्मप्रेमी, बन्धुवर सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

जिनशासन,एवं **पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के प्रभावनायोग से, **तीर्थधाम मङ्गलायतन** निरंतर, जिनशासन की प्रभावना में प्रगतिशील है।

देश-विदेश के मुमुक्षुओं की भावना को साकार रूप देते हुए अब ट्रस्ट ने 'पत्राचार द्वारा आनलाइन जैनदर्शन शिक्षण' को प्रारम्भ किया है। इस 'मङ्गल विद्यापीठ' का उद्घाटन वीरशासन जयन्ती के अवसर पर धूमधाम से किया जा रहा है।

इस मङ्गल विद्यापीठ में, देश के प्रसिद्ध विद्वानों के मार्गदर्शन में जैनदर्शन के विभिन्न कोर्सों को हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा में तैयार किया गया है। जिससे घर बैठे विश्व के किसी भी कोने में, आनलाइन जिनधर्म का शिक्षण प्राप्त किय जा सकता है।

आइये, **तीर्थधाम मङ्गलायतन** के उन्मुक्त वैदेही वातावरण में वीरशासन जयन्ती के मङ्गल कार्यक्रम में, **मङ्गल विद्यापीठ** का उद्घाटन कर जिनधर्मप्रभावना की अनुमोदना करें।

माङ्गलिक कार्यक्रम

28-7-2018

प्रात:	6.30 से 7.00	जिनेन्द्र प्रक्षाल
	7.00 से 8.00	केवलज्ञान पूजन
	8.00 से 8.30	दिव्यध्वनि प्रसारण
	8.30 से 9.00	दिव्यध्वनि पूजन
	9.00 से 9.30	स्वल्पाहार
	9.30 से 10.00	पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन
	10.00 से 11.00	उद्घाटन समारोह
	11.00 से 12.00	स्वाध्याय - वीरशासन
सायं	6.30 से 7.30	जिनेन्द्रभक्ति
रात्रि	7.30 से 9.00	ज्ञानगोष्ठी - वीरशासन

विद्वत् सान्निध्य

पण्डित वीरेन्द्र जैन, आगरा; पण्डित अशोक लुहाड़िया; पण्डित सचिन जैन; पण्डित संजय शास्त्री; पण्डित सुधीर शास्त्री; सचेन्द्र शास्त्री

कार्यक्रमस्थल

तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा मार्ग, निकट हनुमान चौकी, सासनी-204216 (हाथरस)

आयोजक : श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट अलीगढ़

सम्पर्कसूत्र - (कार्या०) 9997996346; पण्डित अशोक लुहाड़िया-9897890893; सुधीर शास्त्री-9756633800

करने लगी। उससे अनेक प्रकार के कामोत्तेजक वार्तालाप किए, बहुत लालच दिए, बहुत डर भी दिखाया, परंतु फिर भी अनंतमती अपने शीलव्रत से रंचमात्र भी डिगी नहीं। कामसेना को तो ऐसी आशा थी कि इस युवा स्त्री का व्यापार करके मैं विपुल धन कमाऊँगी परंतु उसकी आशा पर पानी फिर गया। उस बेचारी विषय-लोलुप वेश्या को क्या पता कि इस युवा-स्त्री ने तो अपना जीवन ही धर्मार्थ अर्पण कर दिया है और संसार के विषय-भोगों की उसके अणुमात्र भी आकांक्षा नहीं है। संसार के भोगों के प्रति उसका चित्त एकदम निष्कांक्ष है। शील की रक्षा करते हुए चाहे जितना दुःख आ पड़े किंतु उसे उसका भय नहीं है। अहा! जिसका चित्त निष्कांक्ष है, वह भय से भी संसार के सुखों की इच्छा कैसे करे? जिसने अपने आत्मा में ही परम सुख का निधान देखा है, वह धर्मात्मा, धर्म के फल में संसार के देवादिक वैभव के सुख स्वप्न में भी नहीं चाहता, ऐसा निष्कांक्ष है; वैसे ही अनंतमती ने भी शीलगुण की दृढ़ता के कारण संसार के सर्व वैभवों की आकांक्षा छोड़ दी; किसी भी वैभव में ललचाए बिना वह शील में अडिग रही। अहा! स्वभाव के सुख के सामने संसार का सुख कौन चाहे? वास्तव में संसार के सुख की वाँछा से छूटकर निष्कांक्षित हुई अनंतमती की यह दशा ऐसा सूचित करती है कि उसके परिणामों का प्रवाह अब स्वभावसुख की ओर झुक रहा है। ऐसे धर्मसन्मुख जीव संसार के दुःख से कभी डरते नहीं हैं और अपना धर्म कभी छोड़ते नहीं हैं। संसार के सुख का वाँछक जीव अपने धर्म में अडिग नहीं रह सकता। दुःख से डरकर वह धर्म को भी छोड़ देता है।

जब कामसेना ने जाना कि अनंतमती किसी भी प्रकार से वश में नहीं आयेगी, तो उसने बहुत सा धन लेकर सिंहराज नामक राजा को सौंप दिया।

बेचारी अनंतमती! मानों सिंह के जबड़े में जा पड़ी! उसके ऊपर पुनः एक नई मुसीबत आई और दुष्ट सिंहराजा भी उसके ऊपर मोहित हो गया, परंतु अनंतमती ने उसका तिरस्कार किया। विषयांध हुआ वह पापी अभिमानपूर्वक सती पर बलात्कार करने को तैयार हो गया; किंतु क्षण में

उसका अभिमान चूर हो गया। सती के पुण्य-प्रताप से (नहीं, शीलप्रताप से) वनदेवी वहाँ आ गई और दुष्ट राजा को शिक्षा देते हुए कहा कि, खबरदार..., भूलकर भी इस सती को हाथ लगाना नहीं! सिंहराजा तो देवी को देखते ही शृंगाल जैसा हो गया, उसका हृदय भय से काँप उठा; उसने क्षमा माँगी; और तुरंत ही सेवक को बुलाकर अनंतमती को मान सहित जंगल में छोड़ आने के लिए आज्ञा दे दी।

अब अनजान जंगल में कहाँ जाना चाहिए? इसका अनंतमती को कुछ पता नहीं था; इतने-इतने उपद्रवों में भी अपने शीलधर्म की रक्षा हुई ऐसे संतोषपूर्वक घोर जंगल के बीच पंच परमेष्ठी का स्मरण करती हुई वह आगे बढ़ी। उसके महाभाग्य से थोड़ी ही देर में आर्यिकाओं का एक संघ दिखाई पड़ा, वह अत्यंत आनंदपूर्वक आर्यिका माता की शरण में गई। अहा! विषयलोलुप संसार में जिसको कहीं शरण न मिली, उसने वीतरागमार्गी साध्वी की शरण ली; उसके आश्रय में पहुँचकर अश्रुपूर्ण आँखों से उसने अपनी वीती कथा कही; वह सुनकर भगवती आर्यिका माता ने वैराग्यपूर्वक उसे आश्वासन दिया और उसके शील की प्रशंसा की। भगवती माता की शरण में रहकर वह अनंतमती शांतिपूर्वक अपनी आत्मसाधना करने लगी।

❖❖❖

अब इस तरफ चंपापुरी में जब विद्याधर अनंतमती को उड़ाकर ले गया, तब उसके माता-पिता बेहद दुःखी हुए। पुत्री के वियोग से खेदखिन्न होकर चित्त को शांत करने के लिए वे तीर्थयात्रा करने निकले; और यात्रा करते-करते तीर्थंकर भगवंतों की जन्मपुरी अयोध्यानगरी में आ पहुँचे। प्रियदत्त के साले (अनंतमती के मामा) जिनदत्त सेठ यहीं रहते थे; वहाँ आते ही आँगन में एक सुंदर रंगोली (चौक) देखकर प्रियदत्त सेठ की आँखों में से आँसुओं की धार बह निकली; अपनी प्रिय पुत्री की याद करके उन्होंने कहा कि मेरी पुत्री अनंतमती भी ऐसी ही रंगोली पूरती थी; अतः जिसने यह रंगोली पूरी हो, उसके पास मुझे ले जाओ। वह रंगोली पूरनेवाला कोई दूसरा नहीं था, अपितु अनंतमती स्वयं ही थी; अपने मामा के यहाँ जब

वह भोजन करने आई थी, तभी उसने यह रंगोली पूरी थी, फिर बाद में वह आर्यिका संघ में चली गई थी। तुरंत ही सभी लोग संघ में पहुँचे। अपनी पुत्री को देखकर और उसके ऊपर बीती हुई कथा सुनकर सेठ गद्‌गद् हो गए, और कहा—'बेटी! तूने बहुत कष्ट भोगे, अब हमारे साथ घर चल... तेरे विवाह की तैयारी करेंगे।'

विवाह का नाम सुनते ही अनंतमती चौंक उठी और बोली; पिताजी! आप यह क्या कहते हैं ? मैंने तो ब्रह्मचर्यव्रत लिया है और आप भी यह बात जानते हैं। आपने ही मुझे यह व्रत दिलाया था।

पिताजी ने कहा—'बेटी, यह तो तेरे बचपन की हँसी की बात थी। फिर भी यदि तुम उस प्रतिज्ञा को सत्य ही मानती हो तो भी वह तो मात्र आठ दिन की प्रतिज्ञा थी; इसलिए अब तुम विवाह करो।

अनंतमती ने दृढ़ता से कहा : 'पिताजी! आप भले ही आठ दिवस की प्रतिज्ञा समझे हों, परंतु मैंने तो मन से आजीवन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा धारण की थी। मैं अपनी प्रतिज्ञा प्राणांत होने पर भी नहीं छोड़ूँगी। अत: आप विवाह का नाम न लेवें।

अंत में पिताजी ने कहा—'अच्छा बेटी, जैसी तेरी इच्छा! परंतु अभी तू मेरे साथ घर चल, और वहीं धर्मध्यान करना।'

तब अनंतमती कहती है—'पिताजी! इस संसार की लीला मैंने देख ली, संसार में भोग-लालसा के अतिरिक्त दूसरा क्या है ? इससे तो अब बस होओ! पिताजी! इस संसार संबंधी किसी भोग की मुझे आकाँक्षा नहीं है। मैं तो अब दीक्षा लेकर आर्यिका होऊँगी और इन धर्मात्मा-आर्यिकाओं के साथ रहकर अपने आत्मिक सुख को साधूँगी।'

पिता ने उसे रोकने का बहुत प्रयत्न किया, परंतु जिसके रोम-रोम में वैराग्य छा गया हो, वह इस असार संसार में क्यों रहे ? सांसारिक सुखों को स्वप्न में भी न चाहनेवाली अनंतमती नि:कांक्षित भावना के दृढ़ संस्कार के बल से मोहबंधन को तोड़कर वीतरागधर्म की साधना में तत्पर हुई। उसने

पद्मश्री अर्जिका के समीप दीक्षा अंगीकार कर ली और धर्मध्यानपूर्वक समाधिमरण करके स्त्री-पर्याय को छेदकर बारहवें स्वर्ग में उत्पन्न हुई।

खेल-खेल में लिए हुए शीलव्रत का जिसने दृढ़तापूर्वक पालन किया और स्वप्न में भी सांसारिक सुख की इच्छा नहीं की, तथा सम्यक्त्व अथवा शील के प्रभाव से कोई ऋद्धि आदि मुझे प्राप्त हो—ऐसी आकाँक्षा भी जिसने नहीं की, वह अनंतमती देवलोक में गई; अहा! देवलोक के आश्चर्यकारी वैभव की क्या बात! किंतु परम निष्कांक्षिता के कारण उससे भी उदास रहकर वह अनंतमती अपने आत्महित को साध रही है। धन्य है उसकी नि:कांक्षिता को!

—यह कथा, सांसारिक सुख की वाँछा छोड़कर, आत्मिक सुख की साधना में तत्पर होने के लिए हमें प्रेरणा—शिक्षा देती है।

पृष्ठ 7 का शेष

आत्मज्ञान ही आनंद-मंगलरूप है

असंख्यात जीव वहाँ हैं। ऐसे आत्मा की श्रद्धा नहीं करनेवाला तो भगवान के समवसरण में भी बैठा हो तो भी वह जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता तथा मिथ्यादृष्टि ही रहता है। बाहर के संयोग क्या कर सकते हैं? अंतर के भूतार्थ स्वभाव को नहीं पकड़े और परभावों को पकड़े तो वह जीव अभूतार्थ ऐसे व्यवहार में ही मग्न है। एक क्षण भी व्यवहार का पक्ष त्यागकर अंतर में राग से पार चिदानंदस्वभाव को पकड़े तो सम्यग्दर्शन होकर जन्म-मरण का अंत आ सकता है।

चारगति के दु:खों से छूटकर आनंदधामवाले निजनगर में प्रवेश करने का यह अवसर है; उसमें हे जीव! तू प्रमादी मत हो।

आत्मा स्वयं शाश्वत-चैतन्य-ज्ञानस्वरूप है; उसको भूलकर शरीर को, रागादिक परभावों को अपना मानना, यह अविद्या है तथा निजभाव की पहिचान करना, वह सम्यक् विद्या है, ऐसी आत्मविद्या-आत्मज्ञान, वह मोक्ष का कारण है और वही आनंद-मंगलरूप है।●

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान श्री आचार्यदेव
आचार्य बप्पदेव

सिद्धांत ग्रंथों के ज्ञाता भगवान आचार्य बप्पदेव अपने समय के जाने माने आचार्य थे। शुभनंदि, रविनंदि व बप्पदेव आदि के नाम श्रुतधराचार्यों में आते हैं। भगवान आचार्य शुभनंदि और रविनंदि नाम के दो आचार्य अत्यंत कुशाग्रबुद्धि के हुए हैं। इनसे आचार्य बप्पदेव ने समस्त सिद्धांतग्रंथ का अध्ययन किया।

आचार्य बप्पदेव ने [1]वेलगाँव जिले के अंतर्गत उत्कलिका नगरी के समीप 'मगणवल्ली' ग्राम में उक्त दोनों गुरुवर्यों से सिद्धांत का अध्ययन किया था। इस अध्ययन के पश्चात् आपने महाबंध को छोड़ शेष पाँच खंडों पर व्याख्याप्रज्ञप्ति नाम की टीका लिखी और छठे खंड की संक्षिप्त निवृत्ति भी लिखी। इन छहों खंडों के पूर्ण हो जाने के पश्चात् आपने कसायप्राभृत की एक उच्चारणा टीका भी रची।

इस भाँति षट्खंडों में से महाबंध को पृथक् कर शेष पाँच खंडों की 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' नामक षट्खंड पर टीका भगवान आचार्यदेव बप्पदेव ने लिखी। वीरसेन स्वामी ने वट्टगाँव (बड़ौदा) में उक्त षट्खंडों में से व्याख्याप्रज्ञप्ति को प्राप्त कर, उससे प्रेरित हो, सत्कर्म नामक छठे खंड को मिलाकर छह खंडों पर धवला टीका लिखी। धवला के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि व्याख्याप्रज्ञप्ति प्राकृतभाषारूप पुरातन व्याख्या रही है। इस भाँति आचार्य बप्पदेव सिद्धांतविषय के मर्मज्ञ थे।

आचार्यवर बप्पदेव की व्याख्याप्रज्ञप्ति के अलावा अन्य कोई भी रचना उपलब्ध नहीं है। फिर भी धवला एवं जयधवला में आपके नाम से जो उद्धरण आते हैं, उनसे आपके वैदुष्य पर प्रकाश पड़ता है। षट्खंडागम में आपका यत्र-तत्र उल्लेख है। अतएव आचार्य के रूप में 'बप्पदेव' अत्यंत प्रतिष्ठित हैं।

आप ईसु की प्रथम शताब्दी के मध्यपाद काल में हुए आचार्यदेव हैं।

व्याख्याप्रज्ञप्ति रचयिता आचार्यदेव बप्पदेव को कोटि कोटि वंदन।

---

1. भागीरथी कृष्णानदी की शाखा है और इनके बीच का प्रदेश बेलगाँव व धारवाड़ अर्थात् बेलगाँव जिला कहलाता है।

भगवान श्री आचार्यदेव
श्री आर्यमंक्षु और नागहस्ति

आचार्यवर आर्यमंक्षु और नागहस्ति दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परंपराओं में सम्मानित हैं। इतना ही नहीं दिगम्बर आम्नाय में आपका स्थान भगवान आचार्यवर पुष्पदंत व भूतबलि मुनिवर के समकक्ष, समकालीन व भिन्न-भिन्न गुरुपरम्परा के आचार्य के रूप में रहा है। जयधवला शास्त्र में बताया है, कि 'विपुलाचल के ऊपर स्थित भगवन् महावीररूपी दिवाकर से निकली वाणी गौतम, लोहार्य, जम्बूस्वामी आदि आचार्य परंपरा से आकर ये कसायपाहुड़ के गाथासूत्र गुणधराचार्य को प्राप्त होकर, गाथारूप से परिणमन करके, पुन: आर्यमंक्षु और नागहस्ति आचार्य के द्वारा आर्य यतिवृषभ को प्राप्त होकर, चूर्णिसूत्ररूप से परिणत हुई है। ऐसी यह दिव्यध्वनि किरणरूप से आज्ञान अंधकार को नष्ट करती है।' इससे स्पष्ट है, कि ये दोनों आचार्य अपने समय के कर्मसिद्धांत के महान वेत्ता और आगम के पारगामी थे तथा वे भगवान महावीर से चली आई आचार्य परंपरा से अभिन्न थे। इतना ही नहीं, धवला टीका के आधार से वे 'क्षमाश्रमण'[१] और 'महावाचक'[२] के रूप में बहुमानित रहे हैं। यह ही उनके सिद्धांतविषयक विद्वत्ता को सूचित करता है।

भगवान आचार्यदेव वीरसेनस्वामी ने धवला व जयधवला टीका में विविध स्थलों पर, आप उभय आचार्यवरों की जो विविधरूप से महत्ता प्रदर्शित की है, उससे ज्ञात होता है, कि आप न केवल 'क्षमाश्रमण' व 'महावाचक' थे; पर जिनेन्द्रसिद्धांतों के मर्मज्ञ व व्याख्याता भी थे। साथ-साथ में आपके वचन भगवान महावीर की दिव्यध्वनि के साथ एकरसतायुक्त थे। आप दोनों की पूर्वोक्त अवधि को गौण करें, तो आप दोनों समकालीन थे।

गुणधर आचार्य द्वारा भगवान महावीर की दिव्यध्वनि से विनिर्गत चौदह पूर्वों में से पाँचवे पूर्व 'ज्ञानप्रवादपूर्व', 'पेज्जदोषपाहुड़' व 'महाकम्मयपाहुड़' का आपने ज्ञान प्राप्त कर यतिवृषभ आचार्य को देने से 'कसायपाहुड़' ग्रंथ में

1. क्षमाश्रमण = मुनियों की उत्तमतादर्शक एक उपाधि।
2. महावाचक = मुनियों की उत्तमतादर्शक एक उपाधि।

यतिवृषभ आचार्य ने गाथाबद्ध चूर्णिसूत्र रचे जिससे यह महान ग्रंथ जीवों को बोधगम्य हो सका।

यद्यपि आचार्यवर यतिवृषभ ने अपने कसायपाहुड़ के चूर्णिसूत्रों में आर्यमंक्षु और नागहस्ति को गुरु के रूप में उल्लिखित नहीं किया है और न अन्य किसी आचार्य को अपने गुरु के रूप में उल्लेख किया है। फिर भी आचार्य इन्द्रनंदि के श्रुतावतार ग्रंथ में आर्यमंक्षु और नागहस्ति को गुणधराचार्य का शिष्य बताया गया है। यह परंपरारूप से शिष्यत्व हो ऐसा प्रतीत होता है। कषायपाहुड़ ग्रंथ की टीका जयधवला में उल्लेख है कि, 'गुणधर के मुखकमल से निकली हुई गाथाओं के अर्थ को जिनके पादमूल में सुनकर यतिवृषठा ने चूर्णिसूत्र रचे।' अत: इस पर से यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों आचार्यों के परंपरा गुरु गुणधराचार्य होंगे। गुणधराचार्य ने कसायपाहुड़ की सूत्रगाथाओं को रचकर स्वयं ही ने उनकी व्याख्या करके आर्यमंक्षु और नागहस्ति को पढ़ाया व आचार्यवर आर्यमंक्षु और नागहस्ति के पादमूल में रहकर आचार्य यतिवृषभ ने 'कसायपाहुड़' के चूर्णिसूत्र रचे।

इतिहासकारों का मानना है कि गुणधराचार्य द्वारा विनिर्गत पेज्जदोषपाहुड़ की 180 गाथा पर से नागहस्ति आचार्य ने उसे 233 गाथा में लिपिबद्ध किया हो, अथवा गुणधराचार्य द्वारा ही 233 गाथा विनिर्गत हुई हों, जिसे नागहस्ति आचार्य ने लिपिबद्ध किया हो या आचार्य यतिवृषभ ने चूर्णिसूत्रों सह लिपिबद्ध किया हो।

आप दोनों आचार्यवरों का महान गुणधर आचार्य से सीधा संबंध होने या प्रवाहरूप संबंध होने के लिए विविध उल्लेख शास्त्र में मिलते हैं, परंतु विद्वत वर्ग उसमें एकमत नहीं है, फिर भी उन सब उल्लेखों पर से यह तो स्पष्ट हो जाता है, कि आचार्यदेव आर्यमंक्षु व नागहस्ति का आचार्य गुणधरदेव से सीधा संबंध होने के बारे में सुस्पष्टता 'ना' नहीं कहा जा सकता है। पर तीनों के काल पर से यह योग्य प्रतीत नहीं होता है।

उभय आचार्यवरों के बारे में श्वेताम्बर परंपरा से कतिपय जानकारी मिलती है। जैसे—(1) श्वेताम्बर आम्नायी नंदिसूत्र की पट्टावली मेंआचार्य आर्यमंक्षु का परिचय देते हुए लिखा है, कि 'वे सूत्रों के अर्थ व्याख्याता हैं, साधुपदोचित

क्रियाकलाप के करनेवाले हैं, धर्मध्यान के ध्याता व विशिष्ट अभ्यासी हैं, धीरे-धीरे हैं, परीषह और उपसर्गों को सहन करनेवाले हैं एवं श्रुतसागर के पारगामी हैं।'

(2) इसी नंदीसूत्र की पट्टावली में आचार्य नागहस्ति का परिचय देते हुए लिखा है, कि 'वे संस्कृत और प्राकृत भाषा के व्याकरणों के वेत्ता हैं, करणभंगी अर्थात् पिंडशुद्धि, समिति, भावना, प्रतिज्ञा, इंद्रियनिरोध, प्रतिलेखन और अभिग्रह की नानाविधियों के ज्ञाता हैं और कर्मप्रकृतियों के प्रधानरूप से व्याख्याता हैं।'

उक्त दोनों उल्लेखों पर से आर्यमंक्षु और नागहस्ति के व्यक्तित्व के संबंध में निम्नलिखित निष्कर्ष फलित होते हैं—(1) ये दोनों आचार्य सिद्धांत के मर्मज्ञ थे। (2) श्रुतसागर के पारगामी थे। (3) सूत्रों के अर्थव्याख्याता थे। (4) गुप्ति, समिति, और व्रतों के पालन में सावधान तथा परीषह और उपसर्गों को सहन करने में पटु थे। (5) वाचक और प्रभावक भी थे। (6) आप उभय उपकारी संतों का उस समय ऐसा अपूर्व प्रभाव होगा, कि आप स्वयं दिगम्बर आम्नायी आचार्य होने पर भी श्वेताम्बर आम्नाय के साधुगण भी आपको सम्मान से देखते हैं।

जयधवला के कुछ उल्लेखों से यह भी प्रतीत होता है कि आचार्य आर्यमुंक्ष व आचार्य नागहस्ति दोनों विभिन्न गुरुसंप्रदाय के आचार्य होने से कुछ विषयों पर दोनों के मत भिन्न-भिन्न थे।

ग्रंथ धवला और जयधवला में आचार्यवर आर्यमंक्षु और नागहस्ति का उल्लेख जिस क्रम में आया है। उससे यह भी ध्वनित होता है, कि आर्यमंक्षु नागहस्ति से ज्येष्ठ गुरुभ्राता थे। इसलिए उनका नाम प्रथम रखा गया है और नागहस्ति का पश्चात्। पुन्नाटसंघ की गुर्वावली के अनुसार आचार्यवर नागहस्ति आचार्यवर व्याघ्रहस्ति के शिष्य व आचार्य जितदंड के गुरु थे।

इतिहासकारोंनुसार आचार्य आर्यमंक्षु के शिष्य आचार्य यतिवृषभ थे। यतिवृषभ आचार्य, आचार्य नागहस्ति के अंतेवासी थे। इतिहासकारों अनुसार आचार्य आर्यमंक्षु व आचार्य नागहस्ति का काल क्रमशः वी.नि. 600-650 अर्थात् ई.स. 73 से 123 व वी.नि. 620 से 687 अर्थात् ई.स. 93 से 162 माना जाता है।

आचार्यदेव आर्यमंक्षु व नागहस्ति भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

सम्यक्त्व

(1) सच्चे देव-गुरु-धर्म का श्रद्धान मोक्षमार्ग का प्रथम कारण है ।।ग्रंथारम्भ ।।

(2) जितनी शक्ति हो, उतना करना और जिसकी शक्ति न हो उसका श्रद्धान करना, श्रद्धान ही मुख्य धर्म है—ऐसा जानना ।। गाथा 2 ।।

(3) सम्यक्त्व ही मृत्यु से रक्षक है। जिन्होंने जिनराज का सम्यक्त्व रूप श्रद्धान दृढ़ किया है ऐसे अनेक जीवों ने अजर-अमर पद पाया है ।।4 ।।

(4) धर्म में रुचि, रूप संवेग सम्यक्त्व होने से होता है और सम्यक्त्व, शुद्ध गुरु के उपदेश से होता है ।।22 ।।

(5) शास्त्र श्रवण से सत्यार्थ श्रद्धान रूप फल तभी उत्पन्न होगा जब शास्त्र निर्ग्रंथ गुरु से अथवा श्रद्धानी श्रावक से सुना जाए ।।23 ।।

(6) जिन्होंने सम्यक्त्व होने के कारण रूप धर्म पर्व स्थापित किये हैं, वे पुरुष प्रशंसनीय हैं ।।26 ।।

(7) दृढ़ सम्यक्त्वी जीवों को पाप का निमित्त मिलने पर भी पापबुद्धि नहीं होती ।।28 ।।

(8) जो निर्मल श्रद्धानी सुधर्मात्मा हैं, वे किसी भी पापपर्व में धर्म से चलायमान नहीं होते ।।29 ।।

(9) दान-पूजादि में लगकर सम्यक्त्वादि गुणों को हुलसायमान करनेवाली लक्ष्मी सफल है और भोगों में लगकर सम्यक्त्वादि गुणरूप ऋद्धि का नाश करनेवाली लक्ष्मी विफल है ।।30 ।।

(10) जो जीव श्रद्धानी हैं, वे मिथ्यादृष्टियों को गुरु नहीं मानते ।।34 ।।

(11) जिनधर्म की क्षीणता तथा दुष्टों का अत्यंत उदय देखकर सम्यग्दृष्टि जीवों का सम्यक्त्व और भी उल्लसित होता जाता है कि पंचम कल में यह होना है, भगवान ने ऐसा ही कहा है ।।42 ।।

(12) कई जीव धर्म के इच्छुक होकर उपवास एवं त्याग आदि कार्य तो

करते हैं परंतु उनके सच्चे देव-गुरु-धर्म की व जीवादि तत्त्वों की श्रद्धा का कुछ ठीक नहीं होता उन्हें यहाँ शिक्षा दी है कि 'सम्यक्त्व के बिना ये समस्त कार्य यथार्थ फल देनेवाले नहीं हैं। अतः प्रथम अपना श्रद्धान अवश्य ठीक करना चाहिए'॥46॥

(13) निर्मल श्रद्धावान सज्जनों की संगति से निर्मल आचरण सहित धर्मानुराग बढ़ता है। अतः वह सम्यक्त्व की मूल कारण है, सो उसे करना चाहिए॥47॥

(14) साधर्मियों से प्रीति करना सम्यक्त्व का अंग है॥52॥

(15) जिन्हें मिथ्यात्व पाप में तो हर्ष और जिनवचनों के प्रति द्वेष है ऐसे महा मिथ्यादृष्टि जीवों को भी निर्मल चित्तवाले सत्पुरुष परम हित देने की इच्छा रखते हैं॥62॥

(16) सम्यग्दृष्टियों में ही ऐसी सज्जनता होती है कि वे सभी जीवों के प्रति समान भाव रखते हैं और किसी का भी बुरा नहीं चाहते। वे तो विष के समूह को उगलते हुए सर्प के प्रति भी दयाभाव ही रखते हैं॥63॥

(17) कई जीव अपने को सम्यक्त्वी मानकर अभिमान करते हैं, उनसे यहाँ कहा है कि 'घर के व्यापार से रहित बहुत से मुनियों के ही सम्यक्त्व नहीं होता तो घर के व्यापार में तत्पर जो गृहस्थ उनकी हम क्या कहें, उन्हें सम्यक्त्व होना तो महा दुर्लभ है इसलिए तत्त्वों के विचार में सतत उद्यमी रहना योग्य है, थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त करके अपने को सम्यक्त्वी मानकर प्रमादी होना योग्य नहीं है॥64॥

(18) कितने ही जीव तपश्चरणादि तो करते हैं परंतु जिनवचनों की श्रद्धा नहीं करते और उसके बिना उनका समस्त आडंबर वृथा है। अतः सम्यक् श्रद्धानपूर्वक ही क्रिया करनी योग्य है॥65॥

(19) जीवों के जैसे-जैसे श्रद्धान निर्मल होता जाता है। वैसे-वैसे लोकव्यवहार में भी उनकी धर्म रूप प्रवृत्ति होती जाती है और लोक मूढ़ता रूपी खोटा आचरण छूटता जाता है॥66॥

(20) समस्त मूढ़ताओं में लोकमूढ़ता ही प्रबल है। जिससे बड़े-बड़े पुरुषों तक का श्रद्धान शिथिल हो जाता है। दृढ़ सम्यक्त्वी रूपी महाबल से रहित बड़े पुरुष भी लोकमूढ़ता के प्रवाह रूप उत्कट पवन की प्रचंड लहरों से हिल जाते हैं ॥68 ॥

(21) जिसके भी निश्चल सम्यक्त्व नहीं वह दोषवान है। अत: प्रथम जीव को अपना श्रद्धान दृढ़ करना चाहिए ॥70 ॥

(22) तब तक तो सम्यक्त्व का अंश भी नहीं हो सकता जब तक मिथ्या देवादि की सेवा है। अत: मिथ्या देवादि का प्रसंग तो प्रथम दूर ही से छोड़ देना चाहिए और तब ही सम्यक्त्व की कोई बात करनी चाहिए-यह अनुक्रम है ॥71 ॥

(23) सम्यग्दर्शन का अर्थात् देव-गुरु-धर्म के श्रद्धानादि का तो कुछ ठीक न हो और किसी प्रतिज्ञा को धारण करके स्वयं को श्रावक माने तो यह योग्य नहीं है ॥73 ॥

(24) दृढ़ सम्यक्त्वयुक्त जीवों को यदि पूर्व कर्म के उदय से विघ्न का एक अंश भी आ जाए तो भी पापी जीव उसे प्रकट करके कहते हैं कि यह धर्म का फल है जबकि मिथ्यात्व का सेवन करनेवालों को सैकड़ों विघ्न आते हैं तो भी कोई यह नहीं कहते कि 'ये विघ्न मिथ्यात्व का सेवन करने के कारण आये हैं' ॥84 ॥

(25) सम्यक्त्वी जीव के विघ्न भी उत्सव के समान है क्योंकि किसी कर्म के उदय से यदि उसके उपसर्ग भी आता है तो उसमें उसका श्रद्धान निश्चल रहने से पाप की निर्जरा होती है और पुण्य का अनुभाग बढ़ता है तब आगामी महा सुख होता है सो सम्यक्त्व सहित दु:ख भी भला है ॥85 ॥

(26) जो जीव मरणपर्यंत दु:ख को प्राप्त होते हुए भी सम्यक्त्व को नहीं छोड़ते उनको इंद्र भी अपनी ऋद्धियों के विस्तार की निंदा करता हुआ प्रणाम करता है क्योंकि वह जानता है कि 'सम्यक्त्व आत्मा का

स्वरूप है अत: अविनाशी ऋद्धि है सो दृढ़ सम्यक्त्वी जीव ही शाश्वत् सुख प्राप्त करते हैं जबकि लोक की ये ऋद्धियाँ इंद्र-विभूति आदि तो विनाशीक हैं, दु:ख की ही कारण हैं' ॥86 ॥

(27) मोक्षार्थी जीव अपने जीवन को तो तृण के समान त्याग देते हैं परंतु सम्यक्त्व को नहीं त्यागते क्योंकि जीवन तो पुन: प्राप्त हो जाता है परंतु सम्यक्त्व के चले जाने पर उसका फिर पाना दुर्लभ है ॥87 ॥

(28) जो पुरुष सम्यक्त्व रूपी रत्नराशि से सहित हैं, वे यदि धन-धान्यादि विभव रहित हैं तो भी विभव सहित हैं और वे ही सच्चे धनवान हैं क्योंकि वीतरागी सुख के आस्वादी हैं और परद्रव्य के होने तथा न होने में उन्हें हर्ष-विषाद नहीं होता परंतु जो पुरुष सम्यक्त्व से रहित हैं वे धनवान होते हुए भी दरिद्र हैं क्योंकि वे परद्रव्य की हानि-वृद्धि से सदा आकुलित हैं ॥88 ॥

(29) सम्यग्दृष्टि को अवश्य ज्ञान-वैराग्य होता है इसलिए वीतराग की पूजा आदि में उसे परम रुचि बढ़ती है। धर्मकार्य के समय में किसी व्यापारादि कार्य के आ जाने पर वह धर्मकार्य को छोड़कर पापकार्य में नहीं लगता—यह ही सम्यग्दृष्टि का चिह्न है ॥89 ॥

(30) तीर्थंकर देवों की पूजा सम्यक्त्व के गुणों की कारण है ॥90 ॥

(31) सम्यक्त्व सहित जीव जिनभाषित धर्म को सत्यार्थ जानता है एवं अन्य मिथ्यादृष्टि लोगों की सब रीति को मिथ्या जानता है ॥91 ॥

(32) शास्त्रों का विशेष अभ्यास सम्यक्त्व का मूल कारण है ॥92 ॥

(33) सम्यग्दृष्टि जीव हरिहरादि की ऋद्धियों एवं समृद्धिरूप वैभव में भी नहीं रमते तो अन्य विभूति में तो कैसे रमेंगे अर्थात् नहीं रमेंगे क्योंकि ज्ञानी जीव बहुत आरंभ और परिग्रह से नरकादि के दु:खों की प्राप्ति जानते हैं और केवल सम्यग्दर्शनादि ही को आत्मा का हित मानते हैं ॥95 ॥

[साभार : उपदेश सिद्धांत रत्नमाला]

नवीन शिलान्यास सम्पन्न

सनावद, 22 अप्रेल 2018 : श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन परमागम ट्रस्ट के अन्तर्गत, श्री महावीरस्वामी जिनमन्दिर, समवसरण मन्दिर, स्वाध्यायभवन एवं श्री सम्मेदशिखरजी की रचना का नवीन निर्माण डॉ० जगदीश जैन एवं ब्रह्मचारी पण्डित जतीशचन्द्र जैन शास्त्री परिवार सनावद द्वारा प्रदत्त भूमि पर करने का निश्चय हुआ है। पण्डित श्री रजनीभाई के निर्देशन में विधि-विधानपूर्वक शिलान्यास का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जिसमें देश के विभिन्न श्रेष्ठीगणों ने अनेक प्रकल्पों का शिलान्यास अपने कर-कमलों से किया।

इस महोत्सव को सफल बनाने में स्थानीय युवक श्री सुधीरजी, संजयजी, आदित्यजी, डॉ० रवीशजी, डॉ० विवेकजी, जनीशचन्द्रजी, दिनेशचन्द्रजी, नरेन्द्रकुमारजी आदि का विशेष योगदान रहा।

गुरुवाणी मन्थन शिविर एवं उपकार दिवस सम्पन्न

ग्वालियर : अप्रेल माह के अन्त में, श्री कुन्दकुन्द अपार्टमेन्ट में, मुमुक्षु मण्डल ग्वालियर के तत्त्वावधान में, गुरुवाणी मन्थन शिविर का भव्य आयोजन किया गया। जिसमें पण्डित वीरेन्द्र जैन आगरा, पण्डित देवेन्द्र जैन बिजौलिया एवं पण्डित संजय शास्त्री मंगलायतन के सान्निध्य में तीनों समय पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रसारण के साथ-साथ स्वाध्याय कराया गया। पण्डित देवेन्द्र जैन द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री के मंगल जीवन का प्रस्तुतिकरण भी किया गया। शिविर की सफलता को देखते हुए भविष्य में प्रतिवर्ष इस प्रकार का शिविर लगाने का संकल्प लिया गया।

नवीन कलशारोहण

विश्वासनगर : मई माह में विश्वासनगर मुमुक्षु मण्डल में स्थापित श्री आदिनाथ दिगम्बर जिन चैत्यालय के ऊपर अस्थायी शिखर पर भव्य कलशारोहण का कार्यक्रम पण्डित संजय शास्त्री मंगलायतन के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। तीन दिवस के इस कार्यक्रम में पूजन-विधान के पश्चात् पूज्य निहालभाई सोगानी के द्रव्यदृष्टि प्रकाश पर प्रतिदिन स्वाध्याय कराया गया। रात्रि में पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन, जिनेन्द्र भक्ति, स्वाध्याय एवं पौराणिक कथाओं का संजयजी द्वारा प्रस्तुतिकरण किया गया।

ज्ञातव्य हो कि विश्वासनगर मुमुक्षु समाज ने अपने पुराने जिनमन्दिर से लगा हुआ एक भूखण्ड को क्रय करने का निर्णय किया है। इसमें सम्पूर्ण दिल्ली समाज ने

अपना योगदान प्रदान किया। भविष्य में मन्दिर के विस्तारीकरण के साथ एक छात्रावास बनाने की भी योजना है।

श्री शान्तिनाथ विधान सम्पन्न

तीर्थधाम चिदायतन : 13 मई को तीर्थधाम चिदायतन हस्तिनापुर में ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री अजितप्रसाद जैन एवं चिदायतन ट्रस्ट द्वारा एक भव्य श्री शान्तिनाथ विधान का आयोजन किया गया। जिसमें शताधिक लोगों ने भाग लेकर कार्यक्रम को सफल बनाया। विधान पण्डित संजय शास्त्री मंगलायतन के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम का संयोजन महासचिव श्री मुकेश जैन मेरठ ने किया। युवा फैडरेशन मेरठ का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। इस प्रसंग पर कलकत्ता मुमुक्षु मण्डल से तीर्थ यात्रासंघ ने भी इस विधान में पहुँचकर कार्यक्रम को सफल बनाया। इसी तरह के विधान हर महीने कराने की भावना व्यक्त की गयी।

बाल शिविर एवं प्रतिमा स्थापन सम्पन्न

उज्जैन : 13 मई से 20 मई तक उज्जैन मुमुक्षु समाज द्वारा बाल शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें पण्डित विमलदादा झांझरी, पण्डित प्रदीप झांझरी एवं पण्डित अभयकुमार खेरागढ़ आदि के सान्निध्य में स्वाध्याय, कक्षा आदि का संचालन किया गया। स्थानीय विद्वान एवं विदुषी बहिनों का कक्षा के संचालन में विशेष सहयोग रहा। शिविर में करीब 250 से 300 बाल एवं युवाओं ने भाग लिया।

शिविर के अन्तिम तीन दिनों में पण्डित संजय शास्त्री मंगलायतन के निर्देशन में श्री यागमण्डल विधान, श्री शान्तिनाथ विधान एवं श्री चन्द्रप्रभ विधान पूर्वक क्षीरसागर जिनमन्दिर में शान्तिनाथ भगवान की तथा चिमनगंज मण्डी जैन मन्दिर में चन्द्रप्रभ भगवान की प्रतिमा स्थापित की गयी। प्रथम और अन्तिम दिन भव्य शोभायात्रा निकाली गयी। कार्यक्रम का संयोजन पण्डित अरहन्त झांझरी एवं जम्बूधवल उज्जैन ने किया।

गुरु कहान संग्रहालय का - भव्य उद्घाटन समारोह संपन्न

सोनगढ़ : स्वाध्यायमंदिर परिसर में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की 129वीं जन्मजयंति के उत्सव के दौरान दिनांक 16अप्रेल 2018को 'गुरु कहान कला संग्रहालय' का उद्घाटन श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ के प्रमुख श्री हसमुखभाई, श्री नवीनभाई, श्री जीतुभाई, श्री राजेशभाई तथा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई के प्रमुख श्री नेमिषभाई, श्री अनंतभाई, श्री मधुभाई, श्री केतनभाई, श्री अनुजभाई, श्री हितेनभाई, श्री अक्षयभाई के साथ मुरब्बी विद्वान श्री

वजूभाई साहेब, श्री हेमंतभाई, श्री सुभाषभाई तथा हजारों मुमुक्षुओं की उपस्थिति में अत्यन्त उत्साहपूर्वक संपन्न हुआ।

ज्ञातव्य है कि इस कला संग्रहालय में विश्व विख्यात कलाकारों द्वारा बनाये गये पूज्य गुरुदेवश्री तथा पूज्य माताश्री के जीवन चरित्र तथा आचार्य भगवंतों द्वारा प्ररूपित जैनधर्म के विभिन्न सिद्धांतों को बतानेवाले चित्रपट तथा मूर्तियों को रखा गया है। जिनका निर्माण श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई द्वारा मुख्यत: पूज्य गुरुदेवश्री की 125वीं जन्म जयंती के समय आयोजित आर्ट केम्प में तथा उसके बाद के समय में कराया गया है। पूर्व में इन चित्रपटों की प्रदर्शनी को भारत के अहमदाबाद, राजकोट, मुम्बई, उदयपुर, श्रवणबेलगोला आदि शहरों में हजारों लोगों द्वारा सराहा गया है। यह कला प्रदर्शन अभी 'गुरु कहान कला संग्रहालय' के रूप में स्थायीरूप से पूज्य गुरुदेवश्री की पवित्र साधनाभूमि अध्यात्म-अतिशयक्षेत्र सुवर्णपुरी परिसर में सभी आगन्तुकजनों के लिए खुली रहेगी।

जबलपुर में गुरुवाणी मंथन शिविर एवं बाल शिविर सम्पन्न

जबलपुर : 21 से 25 अप्रेल 2018 तक पूज्य गुररुदेवश्री के जन्म-जयंती के उपलक्ष्य में गुरुवाणी मंथन शिविर सम्पन्न हुआ जिसमें पूज्य गुररुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन के साथ पण्डित वीरेन्द्रकुमार जैन आगरा, पण्डित देवेन्द्र जैन बिजौलिया के स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ।

मई माह में ब्रह्मचारी श्री सुमतप्रकाश जैन एवं स्थानीय विद्वानों के सान्निध्य में बाल शिविर अनुपम उपलब्धियों के साथ सम्पन्न हुआ। दोनों शिविरों का संयोजन पण्डित विराग शास्त्री ने किया।

वैराग्य समाचार

श्री मुकेश जैन ढाई द्वीप का स्वर्गवास

इन्दौर, 5 मई - मध्यप्रदेश की प्रसिद्ध नगरी इन्दौर की धरातल पर ढाई द्वीप का स्वप्न साकार करनेवाले श्री मुकेश जैन का आकस्मिक निधन हो गया। उनके इस निधन से सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज में शोक की लहर दौड़ गयी। श्री मुकेश जैन जिनधर्म प्रभावना के प्रति एक समर्पित व्यक्तित्व एवं ऊर्जावान होनहार युवा थे। उनके इस अधूरे स्वप्न को पूरा करने की जिम्मेदारी सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज ने उठाई है। इस वैराग्य प्रसंग पर तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार उनके शीघ्र मोक्ष गमन की भावना भाता है।